Volume-12, No. 1 Feb.-2025, pp. Hin.17-23

उत्तराखण्ड राज्य में पर्यावरण एवं सतत् आर्थिक विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन

मिस. कल्पना, शोध छात्रा
राजनीति विज्ञान विभाग
राधे हरि राजकीय पी०जी० कॉलेज, काशीपुर उत्तराखण्ड, भारत
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल उत्तराखण्ड भारत।

शोध का सार

पृथ्वी की सतह पर उपस्थित सभी जीवधारियों का अस्तित्व पृथ्वी के पर्यावरण पर ही टिका है। पर्यावरण सभी जैविक व अजैविक घटकों के संयोग से मिलकर बनता है। जैवमण्डल में उपस्थित सभी जैविक व अजैविक घटक पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र की संरचना करते हैं। जैविक घटकों में जीव–जन्तु, मानव समुदाय, पेड़–पौधे आदि तत्वों का सम्मिश्रण होता है। जबकि अजैविक घटक जल, वायु, अग्नि, भूमि, खनिज पदार्थ आदि के संयोग से बनता है। पर्यावरण के इन सभी घटकों का आपस में समान गति से कार्य करने की प्रक्रिया से ही पृथ्वी पर जीवन की सम्भावना सम्भव हो सकी है। परन्तु पिछले कुछ दशकों से इन सभी घटकों में मानव जाति एकमात्र ऐसा घटक सिद्ध हुआ है, जिसने पर्यावरण के अन्य घटकों को अत्यधिक प्रभावित कर दिया है। मानव ने अपने सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पर्यावरण के अन्दर उपस्थित सभी जैविक व अजैविक घटकों का बड़ी निर्दयता से विदोहन कर आज इन तत्वों को संकटग्रस्त कर दिया है। पर्यावरण में उपस्थित सभी समस्याओं में ज्यादातर भागीदारी मानवीय समुदाय की ही रही है। जिनसे निजात पाने के लिए अब वैश्विक स्तर पर सतत् आर्थिक विकास जैसी नीतियों को अपनाना आवश्यक हो गया है। सतत् आर्थिक विकास का तात्पर्य पर्यावरण के संसाधनों का प्रयोग इस प्रकार से किये जाने पर जोर दिया जाना है कि इन संसाधनों को हम अपनी आने वाली पीढ़ी को भी हस्तांतरित कर सके। यह प्रक्रिया सामान्यतः सतत् विकास की नीति के मूल से उत्पन्न हुई है, जिसमें मानव समुदायों को अपने उद्योग धन्धों को विकसित करने में एक समावेशी बुनियादी ढ़ांचे के रूप में विकसित करना होगा, इस बुनियादी ढ़ांचे का तात्पर्य यह है कि मानव अपने आर्थिक विकास के लिए प्रकृति के संसाधनों का उपभोग कम से कम करेगा। प्रस्तुत शोध पत्र में हम "उत्तराखण्ड राज्य में पर्यावरण एवं सतत् आर्थिक विकासः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" विषय पर सविस्तार चर्चा करेगा।

मुख्य शब्द – पर्यावरण, संसाधन, सतत् आर्थिक विकास, सतत् विकास, समावेशी बुनियादी ढ़ाँचा।

प्रस्तावना

भोगौलिक संरचना के आधार पर पृथ्वी की संरचना को पर्यावरण के दो घटकों में विभाजित करके बनाया गया है, यह घटक सामान्यतः दो प्रकारों में बाँटे हुए हैं। पहला जैविक घटक और दूसरा अजैविक घटक। पर्यावरण के जैविक घटक वह कारक है जो जीवित अथवा सजीव है जैसे जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, वन–जंगल एवं मानव समुदाय। पर्यावरण के अजैविक घटक वह कारक है जो अजीवित है अर्थात् यह निर्जीव है परन्तु जैविक घटकों का जीवन इन पर ही टिका है। यह घटक है जल, वायु, अग्नि, मृदा, खनिज पदार्थ आदि। पर्यावरण के इन दोनों घटकों को कई प्रकारों में बाँटा गया है। जैसे अजैविक घटक को तीन वर्गों में बाँटा गया है– पहला वायुमण्डलीय पर्यावरण, दूसरा जलमण्डलीय पर्यावरण एवं तीसरा स्थलमण्डलीय पर्यावरण। इसी तरह जैविक घटक को भी दो वर्गों में विभक्त किया गया है। पहला वानस्पतिक पर्यावरण, जिसमें पेड़–पौधों व वनस्पति शास्त्र का अध्ययन किया जाता है, दूसरा जीव पर्यावरण, जिसमें समस्त जीवधारी अपने जीवन निर्वाह करने के लिए अपने–अपने सामाजिक समूह एवं संगठनों का निर्माण करते हैं तथा अजैविक घटकों से प्राप्त पदार्थों से अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास करते हैं। इन सभी जीवधारियों में से मानव समुदाय एक ऐसा जीव है, जो पर्यावरण में उपस्थित जैविक एवं अजैविक

दोनों घटकों का प्रयोग अपने जीवन को संरक्षित व सुरक्षित करने के लिए इनका प्राचीन काल से उपभोग करता आ रहा है।

हम सभी जानते हैं, जब मानव पृथ्वी पर आया था तो पृथ्वी का पर्यावरण प्राकृतिक संसाधनों से ओत–प्रोत था। जैविक एवं अजैविक पर्यावरण दोनों ही अपनी स्वास्थ्य एवं सुन्दर अवस्था में थे, परन्तु जैसे–जैसे मानव ने अपना सामाजिक विकास करना आरम्भ किया तो उसके आर्थिक विकास एवं आवश्यकताओं में भी वृद्धि होने लगी, चूंकि थोड़ा देर से ही सही परन्तु धीरे–धीरे मानव यह समझ चुका था कि उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता केवल प्रकृति में ही है। इस तरह अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करना शुरु कर दिया। मानव विकास क्रम के आरम्भिक समय तक तो यह प्राकृतिक संसाधन अपनी सामान्य अवस्था में ही समाज को उपलब्ध होते रहे परन्तु कुछ शताब्दियों बाद विशेषतः उत्तर माध्यमिक काल में मानवीय समुदायों द्वारा उद्योगों की स्थापना की जाने लगी जिस कारण मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का अपनी आवश्यकताओं से अधिक उपभोग करना प्रारम्भ कर दिया, उसने अब जैविक तत्वों के साथ–साथ पर्यावरण के अजैविक तत्वों से भी छेड़छाड करना प्रारम्भ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप जैविक पर्यावरण का एक अन्य वर्ग मानव निर्मित या सामाजिक पर्यावरण या सांस्कृतिक पर्यावरण उभर कर सामने आया।

इस सामाजिक या मानव निर्मित पर्यावरण ने प्राकृतिक संसाधनों में तकनीकी व प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके ज्यादा से ज्यादा अपना आर्थिक विकास करने की चेष्टा की और पृथ्वी पर एक आर्थिक मानव समाज की स्थापना कर दी। यह सत्य है कि पर्यावरण के सभी प्रमुख तत्वों में मानव मात्र एक ऐसा जैविक प्राणी है, जिसकी बौद्धिक क्षमता सबसे अधिक है। प्रकृति और मानव का सम्बन्ध प्रारम्भिक अवस्था में माता और पुत्र की भाँति था यहाँ मैं श्री रविन्द्र नाथ टैगोर जी की कुछ पंक्ति बताना चाहूँगी जिसमें उन्होंने कहा है कि, **"प्रकृति मनुष्य जाति के लिए वह माँ है, जिसकी गोद में ही बालक अर्थात् मानव शोभायमान होता है।"** परन्तु आज के आर्थिक मानव ने टैगोर जी की यह परिभाषा बिल्कुल बदल दी है। आज का आर्थिक मानव अपने लालच की पूर्ति हेतु पर्यावरण के संसाधनों का अनियन्त्रित गति से विदोहन करता ही जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप आज पर्यावरण अपनी स्वस्थ अवस्था से रुग्ण अवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है और जिसके उपचार हेतु स्वयं मानव जाति को ही वैश्विक स्तर पर एक साथ होने पर विवश होना पड़ा। इस विवश्ता का मुख्य कारण पर्यावरण एवं उसके परितंत्र में हो रहे परिवर्तनों के साथ–साथ विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक विकास का मुद्दा भी शामिल था। चूँकि बीसवी शताब्दी पूरे विश्व में युद्धों की राजनीति रही है। इसी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में दो विश्व एवं मध्य में शीत युद्ध जैसी घटनाओं ने वैश्विक स्तर पर सभी राष्ट्रों को पर्यावरण की समस्याओं से रूबरू करवाया है। तो वही दूसरी तरफ ब्रिटेन, फ्रांस जैसे विकसित राष्ट्रों से स्वतन्त्र होकर उभरे कई विकासशील राष्ट्रों के समक्ष उनका सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास की समस्या ने भी जोर पकड़ना शुरु कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप अब सभी राष्ट्रों को मानव जाति के विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए वैश्विक स्तर पर इकट्ठा होना पड़ा।

मानव विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए वर्ष 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वधान में एक सम्मेलन आयोजित करवाया गया, हाँलाकि इससे पहले वर्ष 1968 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में जलवायु परिवर्तन विषय पर चर्चा हो चुकी थी। जिसमें कार्बन डाई आक्साइड के अधिक उत्सर्जन के कारण वैश्विक तापमान में वृद्धि होने के अनुमान बताये गये। वर्ष 1972 का सम्मेलन स्टॉकहोम में 5 से 15 जून तक आयोजित होने वाला विश्व का पहला सम्मेलन भी बना इसी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की भी स्थापना की गई। यह संस्था वर्तमान में भी पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित कार्यों का मुख्य संगठन है। इस सम्मेलन के बाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई सम्मेलनों जैसे हेलसिंकी सम्मेलन 1974, लंदन सम्मेलन 1975, वियना सम्मेलन 1985 आदि में बाल्टिक महासागर, समुद्र डंपिग, ओजोन परत का ह्रास आदि मुद्दों से सम्बन्धित सम्मेलन करवाये गये परन्तु इनमें सिर्फ समस्याओं की ज्यादातर पहचान की गई, कोई निदान नहीं किया गया, जिसके कारण एक बार फिर पर्यावरणीय समस्याओं के निदान हेतु एक नये मार्ग के सहारे को अपनाया गया, जिसकी व्याख्या सतत् विकास के रूप में की गई।

सतत् विकास का अर्थ शाश्वत् या निरन्तर चलने वाले विकास की प्रक्रिया से लिया जा सकता है

इसमें हम प्रकृति के वर्तमान में उपस्थित संसाधनों का उपयोग इस तरह कर सकते हैं, जिनका प्रयोग हमारी आने वाली पीढ़ी भी कर सके। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यूनिस्को (UNESCO) के प्रथम निदेशक जूलियन हैक्सले ने वर्ष 1974 में कोकयोक सम्मेलन में प्रयोग किया था। इसके बाद वर्ष 1980 में यूनिप (UNEP) द्वारा प्रकाशित रिर्पोट **विश्व संरक्षण रणनीति** में सतत् विकास एवं पर्यावरण संरक्षण का विस्तृत उल्लेख भी किया गया। सतत् विकास की नीति को वास्तविक मूर्त रूप प्रदान करने का श्रेय नार्वे की पूर्व प्रधानमंत्री डॉ० ग्रो हार्लेम ब्रन्टलैण्ड को जाता है, जिन्होंने वर्ष 1983 में 21 सदस्यों के साथ मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में ब्रन्टलैण्ड आयोग की स्थापना की तथा वर्ष 1987 में इस आयोग द्वारा प्रस्तुत अपनी रिर्पोट **'हमारा साझा भविष्य'** में सतत् विकास की नींव रखी। इस रिर्पोट के अनुसार ब्रन्टलैण्ड आयोग ने पर्यावरण एवं उसके संसाधनों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने हेतु कहा कि **"सतत् विकास की नीति वह प्रक्रिया है, जिसमें मानव समुदाय अपने आस–पास उपस्थित वर्तमानित प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार करने का प्रयास करेगा, जिसका प्रयोग हमारी आने वाली पीढ़ी भी कर सके।"**

विश्लेषणात्मक अध्ययन

सतत् विकास, पर्यावरण एवं मानव आर्थिक विकास के मध्य एक सेतू की तरह कार्य करता है अर्थात् अब मानव अपने आर्थिक एवं भौतिक विकास के लिए पर्यावरण के संसाधनों का उतना ही उपयोग करे, जितनी कि उसकी आवश्यकता हो। दूसरे शब्दों में कहे तो सतत् विकास, पर्यावरण एवं आर्थिक विकास के मध्य सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है। इसे यहाँ हम सतत् आर्थिक विकास की भी संज्ञा दे सकते हैं क्योंकि मानव जीवन पूरी तरह से प्रकृति पर निर्भर है, चूँकि मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए आज पर्यावरण को संकट की स्थिति में डाल दिया है तो यह आवश्यक भी हो गया है कि अब पर्यावरण का संरक्षण एवं उसकी देखभाल का उत्तरदायित्व भी मानव समुदायों के कंधों पर आ पड़ा है। अब मानव द्वारा पर्यावरण की ऐसी स्थिति कर दी गई है कि अगर मानव ने इसका कोई उपचारात्मक निदान नहीं किया तो उसका स्वयं का जीवन भी संकट की स्थिति में पहुँच जायेगा, इसलिए मानव ने सतत् आर्थिक विकास को अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। सतत् आर्थिक विकास की नीति का सर्वप्रथम प्रयोग 21वी शताब्दी के आरम्भिक वर्ष 2008 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में विश्व के 189 देशों ने मिलकर पर्यावरण ह्रास के कारण समाज में उपजी विषमताओं जैसे गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, बाल मृत्युदर, शारीरिक व लैंगिक विरूपता आदि समस्याओं के निदान हेतु आठ ऐतिहासिक सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों का निर्धारण वर्ष 2015 तक अपनाने का प्रयास किया। यह आठ लक्ष्य थे–

1. विश्वव्यापी अत्यन्त गरीबी और भूखमरी को मिटाना है।
2. विश्व में सभी देशों में लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना।
3. विश्व के सभी राष्ट्रों में बेसिक एवं प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देना।
4. वैश्विक स्तर पर बाल मृत्यु दर को कम करना।
5. महिला पोषण एवं जननी स्वास्थ्य में सुधार लाना।
6. वैश्विक महामहारियाँ जैसे मलेरियाँ, डेंगू एवं एड्स आदि बीमारियों से बचाव के प्रयास करना।
7. सभी राष्ट्रों द्वारा विकास के लिए पर्यावरण के मार्ग को प्रशस्त करना।
8. राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण सुरक्षा को प्राथमिकता देकर सुनिश्चित करना।

वैश्विक स्तर पर उपरोक्त सभी आठ लक्ष्यों का निर्धारण एवं व्याख्या 21 उपलक्ष्यों में की गई है क्योंकि सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों का कार्यकाल 25 वर्ष का था, इसका निर्धारण तो वर्ष 2000 में किया गया परन्तु उप लक्ष्यों की प्राप्ति का समय 1990–2015 तक की अवधि तक रखा गया था। सहस्त्राब्दि विकास के आठ लक्ष्यों में अधिकतर लक्ष्यों की प्राप्ति कर ली गई है, खुद भारत ने भी इन आठ लक्षित लक्ष्यों में से गरीबी, शिक्षा, एड्स, बाल मृत्यु दर आदि लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया है। बाकि बचे अन्य लक्ष्यों की पूर्ति सतत् विकास लक्ष्य–17 में किये जाने की घोषणा की गई है। 25 सितम्बर 2015 को सतत् विकास लक्ष्य–17 ने सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों का रूप ले लिया। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के 193 सदस्यों ने सतत् विकास लक्ष्य–17 एजेण्डा में 169 उपलक्ष्यों को वर्ष 2030 तक प्राप्त करने के लिए घोषित किया है। इन 17 लक्ष्यों को 1 जनवरी 2016 से लागू भी किया जा चुका है।

अब हम बात करें भारत में पर्यावरण एवं सतत् आर्थिक विकास की तो भारत ही विश्व की वह भूमि है, जहां कि ग्रामीण एवं निरक्षर जनता ने विश्वविख्यात चिपकों आन्दोलन को हवा देकर अपने क्षेत्र के वनों और जंगलों को संरक्षण प्रदान कर पर्यावरण को बचाने का प्रयास अपने जीवन को जोखिम में डालकर किये। भारत में चिपकों आन्दोलन के बाद साइलेन्ट वैली आन्दोलन जो कि केरल राज्य के पालक्काड जिले के राष्ट्रीय उद्यान 'साइलेन्ट वैली की मुख्य नदी कुन्तीगंढ पर राज्य सरकार द्वारा 200 मेगावाट की जलविद्युत परियोजना के प्रस्ताव के विरोध में जनसामान्य का आन्दोलन बना, वहीं वर्ष 1961 में मध्य प्रदेश नर्मदा नदी पर सरदार सरोवर बांध परियोजना के विरुद्ध वर्ष 1985 में नर्मदा बचाओं आन्दोलन ने जन्म लिया। भारत के उत्तर–पश्चिम राज्य ही नहीं बल्कि दक्षिणी राज्यों में भी पर्यावरण संरक्षण के लिए कई आन्दोलनों ने अपने क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करने के प्रयास किये हैं जैसे अप्पिकों व चिल्का आन्दोलन। दक्षिण भारत के कर्नाटक जिले में स्थित सिलवी क्षेत्र में वर्ष 1983 में सरकारी विभाग के कर्मचारियों द्वारा जंगलों से कुछ पेड़ों का कटान किया जा रहा था, जिसका विरोध सिलवी क्षेत्र के लगभग 160 पुरुष व महिलाओं ने पेड़ों से चिपककर जंगलों को संरक्षण प्रदान कर अप्पिको आन्दोलन की नींव रखी। वर्ष 1991 में ही देश के पूर्व में स्थित उड़ीसा राज्य की चिल्का झील में झींगा मछली व झील के अन्य प्रवासी पक्षियों के संरक्षण के लिए चिल्का आन्दोलन ने जन्म लिया। दरअसल एशिया एवं भारत की सबसे बड़े खारे पानी की झील उड़ीसा की चिल्का झील से इस राज्य के लगभग 192 गाँवों का मतस्य पालन से गुजर चलता है। वर्ष 1986 में जे०पी० पटनायक की सरकार ने इस क्षेत्र की 1400 हैक्टेयर झींगा मछली के क्षेत्र को सरकार की संयुक्त कम्पनी और टाटा को पट्टे पर देने का फैसला किया और वर्ष 1991 में जनता दल की सरकार ने झील के प्रमुख झींगा क्षेत्र को विकसित करने के लिए टाटा कम्पनी को आमंत्रण दे दिया, जिससे क्षेत्र के सभी लोगों ने सरकार के विरुद्ध आन्दोलन कर दिया।

उपरोक्त आन्दोलनों के अतिरिक्त 21वी सदी के आरम्भ में ही वर्ष 2000 में केरल का कोला–कोला आन्दोलन काफी चर्चा का विषय रहा। दरअसल यह आन्दोलन केरल राज्य के एक छोटे से गांव प्लाचीमाडा के किसानों द्वारा कोका–कोला उद्योग के विरोध में किया गया, जन आन्दोलन था। इस आन्दोलन में गांव के किसानों का मानना था कि कोका–कोला कम्पनी द्वारा स्थापित उद्योग के लगने के कारण गाँव के पानी के स्त्रोत दिन–प्रतिदिन सूखते जा रहे हैं क्योंकि कम्पनी द्वारा प्रतिदिन 15 लाख लीटर पानी का प्रयोग कोका कोला की 12 लाख 24 हजार बोतलों को बनाने के लिए प्रयोग किया जा रहा है, जिस कारण गांव में पानी का स्तर पृथ्वी की सतह से करीब 150 फीट नीचे तक चला गया है, इस उद्योग के कारण गांव का परितंत्र और जैव–विविधता काफी प्रभावित हो रही है। कोका–कोला पर गाँव के किसानों का गुस्सा इतना फूटा कि वर्ष 2004 में इस उद्योग को पूर्ण रूप से बन्द करवा दिया गया।

केरल के प्लाचीमाडा के बाद कोका–कोला उद्योग का विरोध उत्तर भारत के प्रमुख राज्य उत्तराखण्ड में भी किया गया। वर्ष 2013 में देहरादून जिले के निकट कालसी ब्लाक के छिबरों नामक गांव में राज्य सरकार द्वारा कोका–कोला प्लांट लगाने की मंजूरी दे दी गई, छिबरों की जिस भूमि पर इस प्लांट की स्वीकृति दी गई, वह कालसी ब्लाक का सर्वाधिक घने जंगलों वाला क्षेत्र था, जिस कारण गांव की जनता ने इस उद्योग का विरोध किया और यहां भी कोला–कोला हार गया।

यहाँ हमें घ्यांतव्य होना चाहिए कि उत्तराखण्ड की भूमि वही महत्वपूर्ण भूमि है, जिसने पर्यावरण व उसके परितंत्र को संरक्षित रखने के लिए 'चिपको आन्दोलन' की नींव रखी थी। इस राज्य में चिपकों आन्दोलन के बाद डुंग्री पैतौली आन्दोलन, पाणी राखो आन्दोलन, रक्षा सूत्र आन्दोलन, मैती आन्दोलन, झपटों छीनों आन्दोलन व हिमालय बचाओं आन्दोलन जैसी कई महत्वपूर्ण घटना घटित हुई है, जिन्होंने यहाँ के पर्यावरण को सदैव संरक्षण प्रदान किया है। इन सभी आन्दोलन का मुख्य आधार चिपकों आन्दोलन ही रहा। अभी हाल में मई 2024 में राज्य की राजधानी देहरादून के खंलगा वन क्षेत्र को संरक्षित करने के लिए देहरादून की आम जनता ने पेड़ों से चिपककर उनको बचाने का प्रयास किया। दरअसल देहरादून के खंलगा क्षेत्र में सरकार द्वारा एक कृत्रिम जलाशय बनाने हेतु लगभग 2000 पेड़ों को कटाने की स्वीकृति दे दी। और उन पेड़ों पर लाल निशान तथा नम्बर लगा दिये गये हैं। जिस कारण राज्य के सामाजिक कार्यकर्ता, पर्यावरणविद् और स्थानीय

निवासियों ने इसका विरोध कर सभी पेड़ों पर अपने रक्षा सूत्र बाँध दिये हैं। हालाँकि वन विभाग की ओर से ऐसी किसी योजना का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। परन्तु आन्दोलन फिर भी जारी है।

उत्तराखण्ड में इतने पर्यावरणीय आन्दोलन के बाद भी आज यहां कि परिवर्तित होती प्राकृतिक संरचना ने हम सभी का ध्यान इस छोटे से हिल्स स्टेशन की ओर खींच दिया है। राज्य में विकास के नाम जिन गूढ नीतियों का अनुसरण करके आधुनिक बनाने का प्रयास किया जा रहा है, उसमें पर्वतों की जैव–विविधता को पूरी तरह नुकसान पहुँचाया जा रहा है। उत्तराखण्ड राज्य एक नवनिर्मित राज्य है, इसका भौगोलिक क्षेत्र अभी इतना विकसित नहीं हुआ है, जितना अन्य पर्वतीय राज्य जैसे हिमालच और जम्मू–कश्मीर का है। यहाँ के परितन्त्र से छेड़छाड़ का मतलब यहाँ कि जैव–विविधता एवं मानव जाति को गहरी क्षति पहुँचाने के बराबर है। मात्र 24 वर्ष के इस नवनिर्मित राज्य ने कई प्राकृतिक आपदाओं का दंश झेल लिया है। उत्तराखण्ड की ही नहीं पूरे उत्तर भारत की अविस्मरणीय केदारनाथ त्रासदी, जिसके जख्म आज भी राज्य के पर्वतों पर दिखाई देते हैं, भूली नहीं जाती। 16 जून वर्ष 2013 में आई इस त्रासदी में लगभग 6000 लोग मारे गये, हजारों की संख्या में लोग लापता हुए तथा 4550 गांव इस त्रासदी के कारण प्रभावित हुए थे।

कोविड–19 के बाद वर्ष 2020 में लगभग 2 वर्ष बाद राज्य में सरकार द्वारा चारधाम यात्रा का आयोजन करवाया गया, जिसमें 6 मई 2022 को केदारघाटी के पहले जत्थे में 20000 लोगों के पहुचने के आंकड़े सामने आये, जबकि केदारघाटी में एक दिन में सिर्फ 12000 लोगों के रूकने की क्षमता है जिस पर राज्य सरकार की कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। इतना ही नहीं, इसी वर्ष यात्रा के अन्त में जब केदार घाटी का निरीक्षण किया गया तो पाया कि पर्यटकों द्वारा घाटी में 3 टन अपशिष्ट कचरा व प्लास्टिक को छोड़ा गया था, जिसके आधार पर कुछ पर्यावरण कार्यकर्ताओं का कहना था कि हिमालय की गोद में इतने प्लास्टिक पदार्थों की मात्रा का मिलना राज्य में दोबारा एक केदारनाथ घाटी जैसी त्रासदी को संकेत देना है।

उत्तराखण्ड में ऋषिकेश–कर्णप्रयाग रेल लाइन परियोजना केन्द्र सरकार की बहुत उत्कृष्ट योजना है। जिसका प्रस्ताव वर्ष 1996 में रखा गया था। वर्ष 2015 से इस परियोजना का काम शुरु किया गया, जिसमें राज्य के केदारनाथ, बद्रीनाथ, यमुनोत्री व गंगौत्री आदि चारों धामों की अब दूरी महज 125 कि०मी० में पूरी हो जायेगी, इस रेलवे लाइन को बिछाने के लिए लगभग पहाड़ों को काट कर 17 सुरंगें, 12 स्टेशन एवं 35 पुलों का निर्माण कार्य जोरों–शोरों से चल रहा है, अभी तक इस परियोजना का 75 प्रतिशत कार्य पूर्ण हो चुका है तथा वर्ष 2026 तक यह परियोजना पूर्ण हो जायेगी, परन्तु अभी परियोजना अपनी पूर्ण परिनीति तक भी नहीं पहुँची और जिन क्षेत्रों में इस परियोजना का कार्य चल रहा है वहां के स्थानीय लोगों को अपने प्राकृतिक संसाधनों को खोने का डर सता रहा है।

यह सच है कि मानवीय हस्तक्षेप एवं पर्यटकों की दिन–प्रतिदिन बढ़ती भीड ने उत्तराखण्ड की जलवायु को प्रभावित किया है। अभी हाल ही की बात है 31 जुलाई 2024 को करीब शाम के 7:30 बजे केदारघाटी में तेज बारिश के कारण मन्दाकिनी नदी अपने उफान पर थी, जिस कारण घाटी में भूस्खलन एवं नदी के आस–पास चट्टानों के गिरने की घटना सामने आयी, पहाड़ों पर इतनी तेज वर्षा होने के बावजूद भी चार धाम यात्रा जारी थी, तेज बारिश के कारण घाटी की पक्की सड़क टूट चुकी थी, जिसकी वजह से तीर्थयात्री केदारघाटी में ही फंसे रहे। "आपदा प्रबन्धन एवं पुर्नवास सचिव विनोद कुमार सुमन के अनुसार, 2 अगस्त को रेस्क्यू कार्य के दौरान घाटी से 7243 लोगों को बचाया गया, चार दिवसीय इस बचाव अभियान में 4 अगस्त की शाम तक कुल 10,374 लोगों को घाटी से बचाकर वापस लाया गया, अभी तक घाटी में लापता हुए लोगों का कोई डेटा नहीं है। यहाँ हमें यह ध्यान देने की आवश्यकता है क्या सरकार को इतनी बारिश में चारधाम यात्राओं को संचालित रखना चाहिए क्योंकि अगर ऐसे ही सरकार चार धाम यात्राओं का आयोजन करती रहेगी या इन पर नियंत्रण नहीं रखेगी तो वह दिन दूर नहीं जब राज्य को दूसरी केदार घाटी जैसी त्रासदी का सामना करना ही पड़ेगा। डॉ० लक्ष्मीकान्त पंत की कुछ पंक्तियाँ लिखना चाहूँगी जिसमें उन्होंने कहा कि "लोगों को पहाड़ों की याद अपने मनोरंजन और अपनी गर्मी की छुट्टियाँ बिताने के लिए आती हैं।"

निष्कर्ष एवं सुझाव

उत्तराखण्ड राज्य भारतीय संघ का उत्तर प्रदेश से पृथक होकर बना एक नवनिर्मित पर्वतीय क्षेत्र है।

यह उत्तर भारत के दो महत्वपूर्ण पर्वतीय क्षेत्र कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश के बाद तीसरे स्थान पर आता है। यहाँ का कुल वनिकी भोगौलिक क्षेत्र 45.44 प्रतिशत है। जिसमें कि 86.07 प्रतिशत क्षेत्र पर्वतीय है और 13.03 प्रतिशत क्षेत्र मैदानी है। राज्य तीनों ओर से हिमशिखरों से घिरा है। इसके उत्तर में भागीरथी और सन्तोपथ ग्लेशियर, पश्चिम में गंगोत्री और बन्दरपूछ ग्लेशियर और पूर्व में मिलम व कालीगढ़ ग्लेशियर स्थित है इन ग्लेशियरों से उत्तराखण्ड राज्य की कई नदियाँ जन्म लेती है, जो राज्य के दक्षिणी और मैदानी भागों को सीचने का काम करती है। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार हिमालय क्षेत्र में लगभग 9527 ग्लेशियर हैं इनमें से छोटे बड़े मिलकर उत्तराखण्ड में कुल 1439 ग्लेशियर स्थित है। इसके साथ ही राज्य की कुछ प्रमुख नदियाँ काली, अल्कनन्दा, भागीरथी, टोंस और कोसी है जो राज्य की लगभग 40 सहायक नदियों के साथ मिलकर इस हिमालय के छोटे से क्षेत्र को जल संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करवाती है। उक्त प्राकृतिक संसाधनों के आंकडों से ज्ञात होता है कि राज्य प्राकृतिक संसाधनों के भण्डारों से ओतप्रोत हैं, परन्तु फिर भी ऐसे क्या कारक हैं, जिसने इसकी जैव–विविधा को प्रभावित कर दिया और वर्तमान में इस नवनिर्मित राज्य के प्राकृतिक संसाधन संकट की स्थिति में पहुँच गये हैं।

राज्य में प्राकृतिक संसाधनों के अतिरिक्त खनिज पदार्थ जैसे चूना, पत्थर, जिप्सम, सोना, सल्फर आदि अनेक पदार्थ राज्य की चट्टानों में पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है। परन्तु जैसा कि ऊपर वर्णित है यह सब पर्यावरण के अजैविक घटक है, जिनकी पुनः निर्मित होने की अवधि काफी लम्बी होती है। इसलिए अगर इनका समय रहते इनका रक्षण न किया गया तो यह समाप्त भी हो सकते हैं। इसके लिए हमें मानव समुदाय के आवश्यकता से अधिक उपभोग पर नियंत्रण लगाने की आवश्यकता है। यह सच है कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके विकास पर ही निर्भर करती है। परन्तु विकास की परिभाषा का अर्थ यह नहीं कि जिन प्रकृति के संसाधनों पर सभी जीव–जन्तुओं का सामान अधिकार है उसका मुख्य केन्द्र मानव ही बन कर रह जाये। उत्तराखण्ड की प्राकृतिक स्थिति भी कुछ ऐसी ही प्रतीत होती नजर आ रही है। राज्य में विकास का जो मॉडल स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है, उसमें कहीं न कहीं पर्यावरणीय तत्वों के संरक्षण का अभाव सा महसूस होता है। जलवायु परिवर्तन के कारण राज्य के हरिद्वार जिले में गंगा नदी तट पर कई ऐसी विदेशी पक्षीयों की प्रजाति का आना भी बन्द हो गया, जो पहले ठण्ड के कारण इस क्षेत्र में प्रवास के लिए आया करती थी इस जलवायु परिवर्तन का असर सिर्फ इन पक्षियों पर ही नहीं पड़ा बल्कि राज्य के पशुओं पर भी पड़ा है। देहरादून वाइल्ड लाइफ इन्स्टीयूट ऑफ इण्डिया के वैज्ञानिक डॉ० बिवाश पाण्डे कहते हैं कि "जलवायु परिवर्तन के असर से वन्य जीव संघर्ष की घटनाएँ पहले से अधिक बढ़ गयी है। वह उच्च हिमालय में भालू के बढ़ते संघर्ष का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि पहले भालू 4–5 महीने पर्वतीय क्षेत्रों में शीत निन्द्रा में रहते थे, लेकिन बर्फबारी कम होने के कारण भालू अब एक महीना भी शीत निन्द्रा में नहीं जा रहे हैं। प्रकृति के निरन्तर परिवर्तन का प्रभाव राज्य की कृषि व्यवस्था पर भी पड़ रहा है। उत्तराखण्ड राज्य की द स्टेट ऑफ इनवायरमेंन्ट रिर्पोट के अनुसार, "उत्तराखण्ड में जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ है, जिसका मूल कारण अनियमित वर्षा, तापमान में बढ़ोतरी, सिंचाई के स्त्रोतों का सूखना, मानसून में देरी आदि रहे हैं।"

इसके साथ ही उत्तराखण्ड राज्य के पर्यावरणीय ह्रास का सबसे महत्वपूर्ण कारण पलायन को भी माना जा सकता है। उत्तराखण्ड पलायन आयोग की एक रिर्पोट के अनुसार, "पहाड़ों में युवाओं का पलायन, पहाड़ों की कृषि व्यवस्था को नष्ट करने में कहीं न कहीं सहायक सिद्ध हुआ है। इनके अनुसार पहाड़ी क्षेत्रों में किसानों की जोते पहले से अधिक छोटी और बिखरी हुई हो गयी है, यहाँ सिर्फ 10 प्रतिशत खेती में सिंचाई की सुविधा है अन्य खेती का भाग मानसून पर निर्भर रहता है।"

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर यही सुझाव प्रस्तुत किया जा सकता है कि उत्तराखण्ड में पर्यावरण का एक सतत् एवं समावेशी विकास का मॉडल स्थापित होना चाहिए, जिसमें प्रकृति के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध संसाधनों का उपभोग सरकारी या गैर सरकारी संस्थानों द्वारा इस प्रकार से किया जा सके जिसमें समाज के सभी वर्गों का सामाजिक विकास हो सके, आर्थिक विषमता को दूर किया जा सके और प्राकृतिक संसाधनों को भी सुरक्षित रखा जा सके।

स्रोत्र–

1. सिंह, डॉ० सविन्द्र, 2020, पर्यावरण भूगोल, प्रवालिका प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 20–21
2. सिंह, डॉ० राजीव कुमार, 2009, पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास, पोइन्टर पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ–1
3. शर्मा, योगेश कुमार, 2004, पर्यावरण, मानव संसाधन एवं विकास, पोइन्टर पब्लिकेशन, पृष्ठ 1–10
4. तिवारी, डॉ० दीनानाथ, 2019, पर्यावरण, सतत् विकास एवं जीवन, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ 52–54
5. विकास पीडिया, भारत सरकार के इलैक्ट्रोनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकीय मंत्रालय की ओर से एक पहल, प्रगत संगठन विकास केन्द्र (सी डैक) हैदराबाद।
6. शिवा डॉ० वन्दना, 2010, अर्थ डेमोक्रेसी, नटराज पब्लिशिंग, देहरादून।
7. शिवा डॉ० वन्दना, पूर्वोक्त।
8. सिंह, वर्षा, 2024, 'डाउन टू अर्थ मासिक पत्रिका', 5 अगस्त
9. पंत, डॉ० लक्ष्मीकान्त, 2016, हिमालय का क्रबिस्तान, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 11
10. देहरादून, वाइल्ड लाइफ इन्स्टीयूट ऑफ इन्डिया, 2021
11. द स्टेट ऑफ इनवायरमेन्ट रिर्पोट ऑफ उत्तरखण्ड, 2019
12. उत्तराखण्ड पलायन आयोग की रिर्पोट, 2019